* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ८ | गौराब्द ४७६, मास—दामोदर ४, वार—अनिरुद्ध
बुधवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०१९, १७ अक्टूबर १९६२ | संख्या ५

श्रीश्रीकृष्णचन्द्राष्टकम्

[श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीकृष्णचन्द्राय नमः

अम्बुदाञ्जनेन्द्रनील-निन्दि-कान्ति-डम्बरः कुंकुमोद्यदर्क-विद्युदंशु दिव्यदम्बरः ।
श्रीमदङ्ग-चर्चितेन्दु पीतनावत-चन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः ॥१॥

गण्ड-माण्डवाति - पण्डिताण्डजेश - कुण्डलश्चन्द्र- पद्मषण्ड-गर्व-खण्डनास्य-मण्डलः ।
वल्लवीषु वर्द्धितात्म-गूढभाव-बन्धनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः ॥२॥

नित्यनव्य-रूप - वेश-हार्द्द - केलि-चेष्टितः केलिनर्म - शर्मदायि - मित्रवृन्द-वेष्टितः ।
स्वीय-केलि-काननांशु-निर्जितेन्द्र-नन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः ॥३॥

प्रेमहेम-मण्डितात्म-बन्धुताभिनन्दितः क्षौणीलग्न-भाल-लोकपाल-पालि-वन्दितः ।
नित्यकालसृष्ट-विप्र-गौरवालि-वन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः ॥४॥

लीलयेन्द्र-कालियोष्ण-कंस-वत्स-घातकस्तत्तदात्म-केलि वृष्टि-पुष्ट-भक्तचातकः ।
वीर्य शील-लीलयात्म-घोषवासि-नन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः ॥५॥

कुञ्ज-रासकेलि-सीधु - राधिकादि - तोषणस्तत्तदात्म-केलि-नर्म - तत्तदालि-पोषणः ।
प्रेमशील-केलि-कीर्ति- विश्वचित्त-नन्दनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः॥६॥
रासकेलि-दर्शितात्म-शुद्धभक्ति-सत्पथः स्वीय-चित्र-रूपवेश-मन्मथालि-मन्मथः ।
गोपिकासु नेत्रकोण-भाववृन्द-गन्धनः स्वाङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः ॥७॥
पुष्पचायि-राधिकाभिमर्ष-लब्धि-तर्षितः प्रेमवाम्य-रम्य-राधिकास्य-दृष्टि-हर्षितः ।
राधिकोरसीह लेप एष हरिचन्दनः स्वङ्घ्रिदास्यदोऽस्तु मे स वल्लवेन्द्र-नन्दनः ॥८॥
अष्टकेन यस्त्वनेन राधिकासु-वल्लभं संस्तवीति दर्शनेऽपि सिन्धुजादि-दुर्लभं ।
तं युनक्ति तुष्टचित्त एष घोष-कानने राधिकांग-संग नन्दितात्म-पाद-सेवने ॥९॥

अनुवाद—

जिनकी कान्तिच्छटा नव-जलधर, सुन्दर काजल तथा इन्द्रनीलमणिकी शोभाको भी पराभूत कर रही है, जिनका वस्त्र कुंकुम, उदय हो रहे सूर्य और विद्युत्से भी दीप्तमान है, जिनका श्रीअङ्ग कपूर और कुंकुमयुक्त चन्दनसे चर्चित है, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥१॥

जिनके दोनों कपोलों पर मकराकृतकुण्डल परम निपुणताके साथ मनोहर नृत्य करते हैं, जिनका मुखमण्डल चन्द्र और कमलोंके गर्वको भी चूर्ण-विचूर्ण कर देता है और जो गोपाङ्गनाओंके बीच अपने निगूढ़ भावको अर्थात् प्रेमको वर्द्धित कर रहे हैं, वे गोपेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरण-कमलोंकी दासता प्रदान करें ॥२॥

जिनका मनोहर रूप, वेश, प्रेमकेलि और प्रेम-चेष्टाएँ नित्यनवीन हैं, जो क्रीड़ा-कालीन सुखदायक अपने सुहृदों द्वारा परिवेष्टित है एवं जिनके केलि-काननकी किरणमालाएँ इन्द्रके नन्दन काननको भी पराभूत करती हैं, वे गोपेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥३॥

प्रेमरूप हेममण्डित बन्धु-बान्धव जिनका अभि-नन्दन करते हैं, इन्द्रादि लोकपालगण पृथ्वी पर मस्तक झुकाकर जिनकी वन्दना करते हैं एवं जो प्रतिदिन प्रातःकाल आदि यथासमयों पर विप्रों और गुरुवर्ग को प्रणाम किया करते हैं, वे गोपेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥४॥

जिन्होंने इन्द्र और कालिय नागका दर्प चूर्ण किया है, कंस और वत्सासुरका ध्वंस किया है और जो इन्द्र आदिके गर्वको चूर्ण करनेवाली लीलामृत-धाराकी वर्षाद्वारा अपने भक्तरूप चातकोंका पोषण करते हैं तथा जो अपनी शूरता-वीरता आदि द्वारा आभीर-पल्लीके निवासी गोपोंको परमानन्दित करते हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलों-की दासता प्रदान करें ॥५॥

जो कुंजमें रास-क्रीड़ारूप अमृत-सिंचन द्वारा श्रीराधिकाजीका सन्तोष विधान कर रहे हैं एवं जो अपनी उस रास-क्रीड़ा-जनित हास्यपरिहास आदि द्वारा श्रीराधिकाकी सखियोंको परितुष्ट करते हैं तथा जिनके प्रेम, चरित्र और क्रीड़ाओंकी कीर्त्तिराशि सम्पूर्ण जगतके लोगोंके मानस पटलको पवित्र करती

है, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलों की दासता प्रदान करें ॥६॥

जो रासलीला-समूह द्वारा भक्तोंको अपनी शुद्ध भक्तिमय सत्पथ प्रदर्शन करते हैं, जिनके मनोहर रूप और वेशद्वारा मन्मथका मन भी मथित हो रहा है और जो अपनी तिरछी चितवनसे गोपियोंके हृदयमें विविध प्रकारकी भाव-तरङ्गोंको उद्वेलित कर रहे हैं, वे गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरण-कमलकी दासता प्रदान करें ॥७॥

श्रीराधाजी पुष्प-चयनके लिये आगमन करने पर जो उनके अङ्ग-स्पर्शके लिये उन्मत्त हो उठते हैं, प्रेमोत्पन्न वाम्यभाव अर्थात् प्रतिकूलतावशतः परम रमणीय श्रीराधिकाका मुखचन्द्र दर्शन कर जिनका आनन्दसागर क्षण-क्षणमें वर्द्धित होता है एवं जो श्रीमती राधिकाके वक्षःस्थलपर परम सुगन्धि और परम सुख जनक चन्दनके लेपके समान हैं, वे गोपेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण मुझे अपने चरणकमलोंकी दासता प्रदान करें ॥८॥

जो व्यक्ति इस अष्टकके द्वारा श्रीमतीराधिकाके प्राण-वल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रका स्तव करते हैं, श्रीलक्ष्मी आदिके लिये भी जिनका दर्शन परम दुर्लभ है, वे श्रीकृष्णचन्द्र उसके प्रति प्रसन्न होकर, श्रीवृन्दावनमें श्रीराधिकाके साथ आलिङ्गित होकर उसे अपनी परमानन्दमयी श्रीपाद-पद्म-सेवामें नियुक्त करते हैं ॥९॥

श्रीकृष्ण-तत्त्व

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजीने ही श्रीकृष्ण-तत्त्वका यथार्थ परिचय प्रदान किया है। कृष्ण-तत्त्वसे ही सब प्रकारकी व्यक्त-अव्यक्त तथा स्थूल-सूक्ष्म उपाधियाँ प्रकाशित हुई हैं।

कृष्ण ही परमेश्वर हैं। वे सच्चिदानन्द विग्रह, अनादि, सर्वादि, गोविन्द और समस्त कारणोंके भी मूल कारण हैं।

कृष्ण किसीके भी आश्रित या अधीन तत्त्व नहीं हैं। प्रकृति, काल, कर्म और व्योम—सभी उनके ही वशीभूत हैं। वे नित्य आनन्दमय हैं। वे क्षणभंगुर नहीं हैं, साथ ही अज्ञान भी उनको कभी स्पर्श नहीं करता। वे पूर्णतम ज्ञानमय हैं। निरानन्द भी उनको स्पर्श नहीं करता। फिर दुःखकी तो बात ही क्या, वह उनके समीप कदापि नहीं पहुँच सकता।

कृष्ण-पुरुषोत्तम हैं। वे केवल मात्र प्रापंचिक धारणाके अनुसार गुणसाम्यावस्थामें स्थित अव्यक्त प्रकृति ही नहीं हैं। वे निर्विशेष निराकार नहीं—सविशेष अप्राकृत विग्रहवान हैं। वे न तो जड़ीय-त्रिगुणके अन्तर्गत हैं और न इन्द्रियज ज्ञानकी पकड़-में आनेवाले कोई स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ ही हैं। वे केवल खण्डकालके ही नहीं, अखण्ड कालके भी सृष्टिकर्त्ता हैं। वे सबके आदि हैं, समस्त कारणोंके भी मूल कारण हैं।

दृश्य-कार्यका कारण खोजने पर इन्द्रियज ज्ञानके द्वारा जो कारण निर्धारित होता है, उस कारणको भी पुनः कार्य मान कर उसका भी कारण ढूढ़ा जा सकता है। ऐसा पुनः पुनः करने पर जहाँ कार्य-कारणवादकी धारा समाप्त हो जाती है, वही तत्त्व कृष्ण हैं।

बङ्किमचन्द्रके कृष्ण-तत्त्वका खण्डन

ऐतिहासिक लोग श्रीकृष्णको देश-काल और पात्रके अधीन करनेमें समर्थ नहीं होते। क्योंकि कृष्ण अजित हैं। यदि वे प्रपंचके अधीन होते अथवा मायासे अतीत तत्त्व नहीं होते तो उनको परतत्त्व कहनेके बदले इतर तत्त्व कहा जाता। वे बंकिमचन्द्र द्वारा वर्णित कृष्ण तक ही सीमित नहीं हैं। बल्कि श्रीचैतन्यमहाप्रभुके द्वारा बतलाये गये 'नाम-नामी अभिन्न' विचारके उद्दिष्ट तत्त्व हैं। कृष्ण—पूर्ण शुद्ध एवं नित्य मुक्त तत्त्व हैं। वे चिन्तामणि हैं; उनके नाम भी उसी प्रकार अखिल कामनाओंको पूर्ण करने वाले हैं। उनके नाम, रूप, गुण, लीला और परिकर उनसे अभिन्न होनेके कारण वे अद्वयज्ञान-तत्त्व हैं।

कृष्ण-अजन्मा होनेपर भी भक्तोंके निकट प्रकाशित होते हैं

कृष्ण—अज और अखण्ड हैं। फिर द्वापरके अन्तमें जो उनके आविर्भावका उल्लेख मिलता है, वह उनका प्रपंचमें प्राकट्य मात्र है। परव्योममें उनका जन्म एवं विक्रमसमूह नित्यकाल विराजमान हैं। वही चिन्मय आधार या परव्योममें, अचित्-प्रपंच-के स्थूल-सूक्ष्म आधार के भीतर और बाहर सर्वत्र अनुस्यूत और परिस्फुट है। परिस्फुटावस्थामें उनकी अत्यन्त विचित्रताएँ दृष्टिगोचर होती हैं तथा अव्यक्तावस्थामें उनकी अत्यधिक सूक्ष्मता होती है। वे अत्यन्त निकट, अत्यन्त दूर और सर्वथा ओत-प्रोत भावमें स्थित हैं। अपनी इच्छानुसार वे प्रकट और अप्रकट होते हैं।

कृष्ण तीन शक्तियोंके शक्तिमान और असमोर्द्ध हैं

कृष्णमें इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति होती है। इन शक्तियोंकी पूर्णता उनमें ही है। इन कृष्णके न तो कोई समान है और न उनसे बढ़ कर है; इसलिये वे असमोर्द्ध हैं। जितने प्रकारके आराध्य तत्त्व हैं, उन सबमें श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। अन्यान्य आराध्य तत्त्वोंके प्रकाशक—श्रीकृष्ण ही हैं। कृष्ण—स्वयं प्रकाश तत्त्व हैं। श्रीमद्भागवत १।३।२८ में कहते हैं—

'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

कृष्ण—सभी रसोंके अधिदेवता हैं

कृष्ण—स्वयंकान्त हैं और ऐकान्तिक एकान्तियों के कान्त हैं। कृष्ण बाल गोपाल हैं। वे निखिल माता-पिताओंके एकमात्र बालक हैं। कृष्ण—जगद्बन्धु हैं, जो लोग कृष्णको छोड़ कर दूसरोंको बन्धु मानते हैं, वे ठगे जाते हैं। जो लोग कृष्णेतर वस्तुओंको ईश्वर मानकर उनकी सेवा करते हैं, वे कुछ दिनों तक सेवा करनेके पश्चात् स्वयं ही सेव्य बन बैठते हैं। जिसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि वे हिताहित विवेक-रहित बिलकुल पशु बन जाते हैं।

इतना ही नहीं वे अनुभव-रहित पत्थर जैसे पदार्थ हो पड़ते हैं।

कृष्ण—आनन्द स्वरूप हैं

कृष्ण, सदानन्दमय हैं। मायिक विचारसे 'मयट्' प्रत्ययद्वारा प्रचुरताका बोध होता है। पुनः वैकुण्ठ-ज्ञानसे उससे प्रचुरताके अतिरिक्त सर्वव्यापकताका भी बोध होता है। दुर्भागा जीव उनको संकीर्ण मानव नीतिकी कसौटी पर कसनेकी चेष्टा कर मायाबद्ध हो पड़ता है। कृष्णकी सर्वशक्तिमत्ताको विचार कर जिस व्यक्तिकी जैसी विमुख कल्पना होती है, उसीके अनुसार वह कृष्णको अपनी रुचिके अनुसार ढाल कर तैयार कर लेना चाहता है। कभी कभी वह मनःकल्पित निर्विशेष निराकार कृष्णको माननेका स्वांग करता है। इसी प्रकार न जाने कितनी ही प्रकारकी कल्पनाएँ करता है। भगवद्-भक्तों की एकान्त सेवाके अभावमें कोई भी कृष्णा-नुशीलन (भगवद्भक्ति) में अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। और अधिकारके अभावमें कृष्णतत्त्वका ज्ञान भी नहीं होता। ऐसा व्यक्ति कृष्णका साक्षात्कार कदापि नहीं कर सकता। अनाधिकारी व्यक्ति जड़ीय स्थूल और सूक्ष्म परिचयों और विषय भोगोंमें ही आसक्त रहता है।

कृष्ण-तत्त्वके अधिकारी

बद्धजीव नित्य सत्ता और नित्यसत्यका अनुभव करनेमें असमर्थ होते हैं। वे विक्षिप्त-चित्त होते हैं तथा जन्म मरणके चक्करमें ही पड़े रहते हैं। भोगों में पड़ कर कभी भोगी बनते हैं, तो कभी भोगोंको त्यागकर त्यागी बनते हैं। जड़ीय भले-बुरेके विचार के कारण वे कभी इधर, तो कभी उधर दौड़ते रहते हैं। पुनः पुनः मायाके भयंकर त्रितापोंसे मायिक जगत और मायिक अवस्थाओंकी अनित्यता उपलब्धिका सुयोग प्राप्त कर पाते हैं। यह सत्यानुभूति ही उनको भजन राज्यमें प्रवेश कराती है। इसलिये गीतामें भगवान् स्वयं कहते हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

गोकुलका प्रेम

साधे बिन सुरके अबध गति बाँधे मुख,
राधे-राधे रटना में ऊँची चढ़ि जात है।
कहैं कमलाकर उछाह को परस पाय,
आह में कराह में करारी बढ़ि जात है॥
गोकुल के प्रेम की कहानी कहि आवत ना,
ऊरध उसास ह्वै हियेतें कढ़ि जात है।
श्याम जू की पानी भरी नैन पुतरीन पर,
डोल-डोल गोल-गोल मोती गढ़ि जात है॥

—श्रीकमलाकर 'कमल'

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा

तीसरा-परिच्छेद

कृष्ण ही परम तत्त्व हैं

श्रीचैतन्य चरितामृतमें श्रीकृष्णके सम्बन्धमें यह आम्नान्य वाक्य पाया जाता है—

गौण मुख्यवृत्ति किंवा अन्वय व्यतिरेके।
वेदेर प्रतिज्ञा केवल कहय कृष्णके॥
(श्री चै. च. म. २०।१४६)

वेदोंमें कहीं मुख्य या अभिधा-वृत्तिके योगसे, कहीं गौण या लक्षण-वृत्तिके योगसे, कही अन्वय या साक्षात् व्याख्या द्वारा और कहीं व्यतिरेक या वाक्यों के सहित एकमात्र श्रीकृष्णकी ही व्याख्या की गयी है।

स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय।
परम ईश्वर कृष्ण सर्वशास्त्रे कय॥
अद्वयज्ञान तत्त्ववस्तु, कृष्णेर स्वरूप।
ब्रह्म, आत्मा, भगवान,—तीन तार रूप॥
वेद भागवत उपनिषद आगम।
पूर्णतत्त्व जारे कहे, नाहि जार सम॥
भक्ति योगे भक्त पाय जार दरशन।
सूर्य जेन सविग्रह देखे देवगण॥
ज्ञान-योग-मार्गे तारे भजे जेइ सब।
ब्रह्म आत्मारूप तारे करे अनुभव॥
(चै. च. आ. २।१०६, ५६, २४-२६)

—कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं। वे सबके आश्रय हैं। सभी शास्त्रोंमें कृष्णको ही परम-ईश्वर—सर्व-ईश्वरोंका ईश्वर कहा गया है। कृष्ण अद्वय ज्ञान तत्त्व वस्तु हैं, यही उनका स्वरूप है। फिर भी उन अद्वय-ज्ञान वस्तु कृष्णके तीन रूप हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्।

वेद, उपनिषद और भागवत आदि पुराणों तथा आगमोंमें कृष्णको ही पूर्ण तत्त्व कहा गया है। उनमें ऐसा कहा गया है कि न तो उनके समान कोई दूसरा तत्त्व है और न उनसे बढ़कर कुछ है। वे कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं, उनकी अङ्गकान्ति या अङ्ग ज्योतिको निर्विशेष ब्रह्म कहते हैं तथा जगतके प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी एवं साक्षीके रूपमें स्थित भगवानके अंश ही परमात्मा हैं। भगवद्भक्तजन विशुद्ध भक्ति योगका, अवलम्बन कर भगवानके सच्चिदानन्द श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं। ज्ञानीजनों की आँखें भगवानके अङ्गकी ज्योतिसे चकाचौंध हो जानेके कारण भगवानके श्रीविग्रहको देखनेमें असमर्थ होती हैं। जिस प्रकार सूर्यका आकार रहने पर भी साधारण मनुष्य उनके रूपको प्रखर ज्योतिके कारण नहीं देख पाता, परन्तु देवता लोग सूर्यको साकार देखते हैं, उसी प्रकार ज्ञानीजन भगवत् विग्रह का दर्शन करनेमें असमर्थ होने पर भी भगवद्भक्त

गण भक्तिके प्रभावसे भगवानके सच्चिदानन्द विग्रह का दर्शन करते हैं। जो लोग ज्ञान मार्गसे परतत्त्वका भजन करते हैं, वे उनका ब्रह्म रूपमें दर्शन करते हैं तथा जो लोग योग मार्गसे उनकी उपासना करते हैं, वे उनको परमात्माके रूपमें अनुभव करते हैं। भगवत् दर्शन पूर्ण दर्शन है। ब्रह्म दर्शन तथा परमात्म दर्शन खण्ड दर्शन हैं।

श्वेताश्वर (५।४) में कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ही सबके पूजनीय हैं; वे जन्म-स्वभाव प्राप्त समस्त तत्त्वोंमें ही अधिष्ठान रूपसे नित्य विराजमान हैं। जैसे—

'एको देवो भगवान वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः।'

श्रीमद्भागवतमें भी—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा० १।३।२८)

अर्थात् पहले जिन अवतारोंका वर्णन किया गया है, उनमें कोई कोई पुरुषावतार कारणार्ण-शायी महाविष्णुके अंश हैं, और कोई-कोई आवेशावतार हैं परन्तु व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण स्वयं-भगवान् हैं।

गीतामें भी कृष्णको सबसे परम तत्त्व कहा गया है—

(क) मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

(ख) "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" इत्यादि।

(गीता ७।७ और १५।१५)

[हे धनंजय ! मुझसे बढ़कर कोई भी तत्त्व नहीं है। सभी वेदोंका मैं ही ज्ञातव्य विषय हूँ।]

श्रीगोपालोपनिषद्में कहा गया है—

तस्मात् कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्।
तं रसेत् तं भजेत् तं यजेत्॥

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य,
एकोपि सन् बहुधा यो विभाति।
तं पीठस्थं ये तु भजन्ति,
धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

(गोपाल तापिनी २१ मंत्र)

[इसलिए कृष्ण ही परमेश्वर हैं। उन कृष्णका ही ध्यान करो, उनके ही नामका संकीर्तन करो, उनका ही भजन करो, और उनका ही पूजन करो। सर्वव्यापी सर्ववशकर्त्ता कृष्ण ही सभीके एकमात्र पूज्य हैं। वे एक होकर भी मत्स्य, कूर्म्म, वासुदेव, संकर्षण कारणार्णव-गर्भोदकादि अनेक मूर्त्तियोंमें प्रकटित हैं। शुकदेव आदिकी भांति जो धीर पुरुष उनके पीठस्थित श्रीमूर्त्तिकी पूजा करते हैं, वे ही नित्यसुख लाभ कर सकते हैं, दूसरे कोई भी ब्रह्म-परमात्मा आदिकी उपासनासे वैसा सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। और भी कहते हैं—

कृष्णांशः परमात्मा वै ब्रह्म तज्ज्योतिरेव च।
परव्योमाधिपस्तस्यैश्वर्य-मूर्त्तिर्नसंशयः॥

श्रीकृष्ण ही एकमात्र सर्वेश्वर हैं। परमात्मा उनके अंश हैं। ब्रह्म उनकी ज्योति हैं। परव्योमनाथ नारायण उनके ऐश्वर्य-विलासमूर्त्ति-विशेष हैं। इस सिद्धान्तमें तनिक भी संशय नहीं है, क्योंकि वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा ही निर्धारित किया गया है—

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां। परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मना विपश्चिता॥

(तै. उ. २।१)

[सत्यस्वरूप, चिन्मय और असीमत्व ही ब्रह्म है। चित्त-गुहामें अन्तर्यामी रूपमें अवस्थित तत्त्व ही 'परमात्मा' हैं। परव्योम अर्थात् वैकुण्ठमें विराजमान तत्त्व ही नारायण हैं। इस तत्त्वको जो जान लेते हैं, वे 'विपश्चित्-ब्रह्म" अर्थात् परब्रह्म श्रीकृष्णके साथ सम्पूर्ण कल्याण गुणको प्राप्त होते हैं।]

यहाँ विपश्चित् ब्रह्मतत्त्व ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीमद्भागवतमें भी "गूढ़ं परंब्रह्म मनुष्यलिंगं यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।", विष्णुपुराणमें "यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म नराकृति", और गीतामें "ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहं" इत्यादि हजारों सिद्धान्त वाणियोंमें श्रीकृष्णको विपश्चित् ब्रह्म अर्थात् परंब्रह्म कहा गया है। 'विपश्चित्' शब्दका अर्थ पंडित होता है। श्रीकृष्णके ६४ गुणोंमें पाण्डित्य एक प्रधान गुण है। ६४ गुण ये हैं—

अयं नेतासुरम्यांगः सर्वसल्लक्षणान्वितः।
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसान्वितः॥
विविधाद्भुतभाषावित् सत्यवाक्यः प्रियम्वदः।
वावदूकः सुपाण्डित्या बुद्धिमान् प्रतिभान्वितः॥
विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः सुदृढव्रतः।
देशकालसुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः शुचिर्वशी॥
स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गंभीरो धृतिमान् समः।
वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्यमानकृत्॥
दक्षिणो विनयी ह्रीमान् शरणागतपालकः।
सुखी भक्तसुहृत् प्रेमवश्यः सर्वशुभङ्करः॥
प्रतापी कीर्त्तिमान् रक्तलोकः साधुसमाश्रयः।
नारीगणमनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान्॥
वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्त्तिताः।
समुद्रा इव पंचाशद्दुर्विगाहा हरेरमी॥
जीवेष्वेते वसन्तोऽपि बिन्दुबिन्दुतया क्वचित्।
परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषोत्तमे॥
अथ पंचगुणा ये स्युरंशेन गिरीशादिषु।
सदा स्वरूपसंप्राप्तः सर्वज्ञो नित्यनूतनः॥
सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गः सर्वसिद्धिनिषेवितः।
अथोच्यन्ते गुणाः पंच ये लक्ष्मीशादिवर्त्तिनः॥
अविचिन्त्य महाशक्तिः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः।
अवतारावलीबीजं हतारिगतिदायकः॥
आत्मारामगणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः।
सर्वाद्भुत-चमत्कार-लीलाकल्लोल वारिधिः॥
अतुल्य-मधुर-प्रेम-मण्डित-प्रियमण्डलः।
त्रिजगन्मानसाकर्षीमुरलीकलकूजितः॥
असमानोर्द्ध रूपश्रीः विस्मापितचराचरः॥

(भ. र. सि, द, वि. १ ल. ११-१७ श्लोक)

[नायक कृष्णके गुण ये हैं—(१) अति मनोहर अंग, (२) सर्वसुलक्षणोंसे युक्त, (३) सुन्दर, (४) महातेजस्वी, (५) बलवान, (६) किशोर वयसयुक्त, (७) विविध अद्भुत भाषाविद, (८) सत्य बोलने वाले, (९) मृदुभाषी, (१०) वाक्पटु, (११) बुद्धिमान (१२) सुपण्डित, (१३) प्रतिभाशाली, (१४) विदग्ध अथवा रसिक, (१५) चतुर, (१६) निपुण, (१७) कृतज्ञ, (१८) सुदृढ़ व्रत, (१९) देश-काल-पात्रको पूर्णरूपसे जाननेवाले, (२०) शास्त्र-दृष्टि सम्पन्न, (२१) पवित्र, (२२) जितेन्द्रिय, (२३) स्थिर, (२४) संयमी, (२५) क्षमाशील, (२६) गंभीर, (२७) धीर (२८) सम, (२९) वदान्य, (३०) धार्मिक, (३१) शूर, (३२) करुण (३३) दूसरोंको मान देनेवाले, (३४) दक्षिण अर्थात् अनुकूल, (३५) विनयी (३६) लज्जायुक्त, (३७)

शरणागतपालक, (३८) सुखी, (३९) भक्त-सुहृद, (४०) प्रेमाधीन, (४१) कल्याणकारी, (४२) प्रतापी, (४३) कीर्त्तिशाली, (४४) सबका प्रिय, (४५) सज्जन पुरुषोंका पक्ष ग्रहण करनेवाला, (४६) नारी मनोहारी, (४७) सबका आराध्य, (४८) समृद्धिशाली, (४९) श्रेष्ठ, (५०) ईश्वर अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त। ये ५० गुण भगवान् श्रीकृष्णमें समुद्रकी तरह अगाध और असीम रूपमें वर्तमान हैं तथा जीवोंमें ये बिन्दु-बिन्दु रूपमें हैं। श्रीकृष्ण के अन्य ५ गुण जो ब्रह्मा शिवादि देवताओंमें वर्तमान हैं, वे ये हैं—(५१) सदा स्वरूपमें स्थिति, (५२) सर्वज्ञ, (५३) नित्य-नवीन, (५४) सच्चिदानन्द-घनीभूत-स्वरूप, (५५) सर्व-सिद्धियोंसे सेवित। ये ५५ गुण देवताओंमें बूँद-बूँदरूपमें हैं।

नारायणमें इन ५५ गुणोंके अतिरिक्त और भी ५ गुण अधिक हैं—(५६) अचिन्त्यशक्तिशाली, (५७) कोटि ब्रह्माण्ड विग्रहत्व, (५८) अवतारोंके बीज या कारण, (५९) हतारिगतिदायक और (६०) आत्माराम जीवोंको भी आकर्षण करनेवाले। ये पाँच गुण ब्रह्मा और शिवादिमें नहीं होते, परन्तु श्रीकृष्णमें अत्यन्त अद्भुत भावसे पूर्णतमरूपमें वर्तमान होते हैं। इन ६० गुणोंके अतिरिक्त श्रीकृष्णमें ४ गुण और भी अधिक होते हैं, जो श्रीकृष्णके अतिरिक्त श्रीनारायण आदि किसीमें भी नहीं पाये जाते—(६१) सर्वाधिक चमत्कारपूर्ण लीलामाधुरी, (६२) प्रेम माधुरी, (६३) रूप माधुरी और (६४) वेणु-माधुरी। अतएव स्वरूप-संप्राप्त परब्रह्म अर्थात् विपश्चित् ब्रह्म कहनेसे श्रीकृष्णका ही बोध होता है। उन कृष्णकी यशोराशि ज्योतिके रूपमें सर्वत्र विस्तीर्ण होकर ब्रह्म कहलाती है। इसलिये वेद—सत्य, ज्ञान और अनन्त इन तीन ही गुणोंसे अविपश्चित् ज्योतिर्मय ब्रह्मको लक्ष्य करते हैं। हृदय-गुहामें छिपे हुए तत्त्व ही परमात्मा हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि करके भगवान अपने अंश द्वारा उसमें अणु-प्रविष्ट हैं। अतएव ब्रह्माण्डरूप गुहा या जीव-हृदयरूप गुहामें जो प्रविष्ट हैं, वे श्रीकृष्णके अंश अर्थात् परमात्मा हैं। ईश्वर, नियन्ता, जगत्कर्त्ता, जगदीश्वर, पाता, पालयिता आदि उनके हजारों नाम हैं। वे ही जगतमें अवतारके रूपमें राम, नृसिंह और वामन आदि होकर पालन करते हैं। 'परमे व्योमन्।" अर्थात् परव्योम धाममें श्रीकृष्णकी एक विलासमूर्त्ति नित्य विराजमान रहती है, जिसे श्रीनारायण कहते हैं। इस प्रकार ब्रह्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व और परव्योम-पति भगवत्तत्त्वकी भलीभाँति आलोचना करके जो रसिक पण्डित उन तत्त्वोंके परमाश्रयरूप श्रीकृष्णरूप रसपाण्डित्यपूर्ण विपश्चित ब्रह्मकी सेवा करते हैं, वे दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसगत समस्त अप्राकृत कामको उनके साथ नित्य भोग करते हैं। परमात्मा जो कृष्णके अंश हैं—इसे गीतामें स्वयं श्रीकृष्णने कहा है—

> अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
> विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
> (गीता० १०।४२)

अर्जुन! और अधिक क्या कहूँ, मैं अपने एक अंशसे परमात्माके रूपमें सम्पूर्ण जगतमें प्रविष्ट होकर स्थित हूँ।

फिर ब्रह्म जो श्रीकृष्णकी अंगकान्ति हैं—इसे ब्रह्मसंहितामें कहा गया है—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेष-वसुधादिविभूतिभिन्नम् ।
तद्ब्रह्मनिष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥
(ब्र. सं. ५।४०)

—जिनकी प्रभासे उत्पन्न होकर उपनिषदोक्त निर्विशेषब्रह्म करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डगत वसुधा आदि विभूतियोंसे पृथक् होकर निष्कल, अनन्त अशेष तत्त्वके रूपमें प्रतीत होते हैं, उन्हीं आदि पुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ।

इस कारिकामें भी—

देह-देही-भिदा-नास्ति धर्म-धर्मि-भिदा तथा ।
श्रीकृष्ण-स्वरूपे पूर्णेऽद्वयज्ञानात्मके किल ॥

श्रीकृष्णके स्वरूप सच्चिदानन्द-विग्रहमें जड़ीय शरीरधारी जीवकी भाँति देह-देहीका तथा धर्म-धर्मीका भेद नहीं होता । अद्वयज्ञान-स्वरूपमें जो देह है—वही देही है, जो धर्म है—वही धर्मी है । श्री कृष्ण-स्वरूप एक स्थानमें स्थित मध्यमाकार होने पर भी सर्वत्र पूर्णरूपसे व्याप्त हैं । बृहदारण्यकमें देखिए—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
(५ अध्याय)

—पूर्णरूप अवतारीसे पूर्णरूप अवतार स्वयं प्रादुर्भूत होते हैं; अवतारी पूर्णसे लीलाकी पूर्त्तिके लिये पूर्ण अवतार निकलने पर भी अवतारीमें पूर्ण ही अवशिष्ट रहता है, तनिक भी वह घटता नहीं । पुनः अवतारकी प्रकट लीला समाप्त होने पर (जब अवतार, अवतारीमें मिल जाता है) तब भी अवतारीकी पूर्णतामें वृद्धि नहीं होती । नारद पंचरात्रमें भी ऐसा कहा गया है—

निर्दोष-पूर्णगुण-विग्रहात्मतंत्रो
निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः ।
आनन्दमात्रकरपाद-मुखोदरादिः
सर्वत्र च स्वगतभेद विवर्जितात्मा ॥

—भगवान् निर्दोष और सर्वज्ञ आदि गुणोंसे सम्पन्न विग्रहयुक्त हैं । जड़ शरीर जिस प्रकार चैतन्य रहित तथा उत्पत्ति, स्थिति और विनाश, इन तीन प्रकारके धर्मोंसे युक्त होता है, भगवान्का शरीर वैसा नहीं होता । भगवान्का शरीर चैतन्य विशिष्ट और प्राकृत गुणोंसे रहित अप्राकृत और चिदानन्दमय होता है अर्थात् उनके समस्त अङ्ग-प्रत्यंग आनन्दमात्र हैं । सर्वत्र देह-देही और गुण-गुणी तथा स्वगतभेद रहित परमात्माका स्वरूप है ।

श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द-विग्रह हैं, वे परमात्मा एवं ब्रह्मके आश्रय और सर्वेश्वरेश्वर हैं—यहाँ यह दिखलाया गया । अब वेद जिस प्रकार उनको ही मुख्य और गौण वृत्ति द्वारा तथा अन्वय और व्यतिरेक भावोंसे लक्ष्य करते हैं—उसका विचार करना आवश्यक है । मुख्य या अभिधा वृत्ति द्वारा छान्दोग्य श्रीकृष्णका ही वर्णन करते हैं—

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये । शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये ॥
(८।१३।१)

—श्रीकृष्णकी विचित्र स्वरूपशक्तिका नाम शबल है। कृष्णके शरणागत होकर उस शक्तिके ह्लादिनी-सार भावका आश्रय करें। ह्लादिनीके सार भावका आश्रय कर पुनः श्रीकृष्णके प्रति प्रपन्न (शरणागत) हों। यहाँ श्याम-शब्दकी अभिधावृत्ति द्वारा श्रीकृष्णका ही वर्णन किया गया है।

ऋग्वेद-संहितामें भी आरुणेय्यूपनिषद् ५वें मंत्रमें कहा गया है—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततं विष्णोर्यत् परमं पदम्॥

(१।२२।२३ ऋक्)

—पण्डितजन नित्य-विष्णुके परम पदका दर्शन करते हैं। वह विष्णुपद चिन्मय नेत्रोंसे दिखलायी पड़नेवाला श्रीकृष्णरूप परम तत्त्व है।

पुनः ऋग्वेदमें कहते हैं—

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति-भुवनेष्वन्तः॥

(ऋग्वेद १।२२।१६४ सूक्त ३१ ऋक्)

मैंने देखा—एक गोपाल, उसका कभी पतन नहीं है, कभी निकट और कभी दूर—नाना पथोंमें विचरण कर रहे हैं। वे कभी नानाप्रकारके वस्त्रोंसे आच्छादित हैं। वे इसी रूपमें विश्वसंसारमें पुनः पुनः आना-जाना करते हैं। इस वेद वाक्यद्वारा श्रीकृष्णकी नित्यलीला अभिधावृत्ति द्वारा वर्णित हो रही है। अन्यत्र कहते हैं—

त वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भुरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः
परमं पदमवभाति भूरि॥

(१।५४ सूक्त ६ ऋक्)

ऋक्-मंत्रमें भगवान्‌की नित्य लीलाका वर्णन इस प्रकार किया गया है—तुम्हारे (राधा और कृष्णके) उन गृहोंको प्राप्त होनेकी अभिलाषा करता हूँ, जहाँ कामधेनु प्रसस्त शृङ्गविशिष्ट है और मनोवांछित अर्थको प्रदान करनेमें समर्थ हैं—भक्तोंकी इच्छाको पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णका वह परमपद प्रचुर रूपमें प्रकाशित हो रहा है।

इस वेद मंत्रमें गोकुलवीर श्रीकृष्णका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। ऐसे-ऐसे मुख्य वर्णनके स्थल वेदोंमें अनेक हैं।

गौण या लक्षणावृति द्वारा वर्णन—

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्। (श्वेताश्वतर३।९)

—जिससे दूसरा कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है और जिससे न तो कुछ अणु है और न तो बृहत् ही है, उस एक पुरुष द्वारा ही सब कुछ पूर्ण है, वह स्थिर होकर भी वृक्षकी भाँति ज्योतिर्मय मण्डलमें अवस्थित हैं। कठोपनिषद्‌में कहते हैं—

अग्नि यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं पतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,रूपं-रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
(२।२।२९)

—जिस प्रकार एक ही अग्नि जगतमें प्रविष्ट होकर भिन्न-भिन्न भूताग्निके रूपमें प्रतिबिम्बित होती

है, उसी प्रकार एक ही सर्वभूतान्तरात्मा जगतमें प्रविष्ट होकर भिन्न-भिन्न जीवात्माके रूपमें प्रतिबिम्बित होती है। जो बिम्बके सदृश होकर भी उसके अधीन होती है, उसको प्रतिबिम्ब कहते हैं। जीवात्मा—बिम्बस्थानीय-परमात्माका प्रतिबिम्ब होनेके कारण तत्सदृश ही होती हैं, यह बात सत्य है; परन्तु वे कभी बिम्ब स्वरूप अर्थात् परमात्मा नहीं होतीं। बल्कि बिम्बस्वरूप परमात्माके बहिर्भागमें ही अवस्थित होती हैं। वे सूर्यमण्डल स्थानीय परमात्मा की बहिश्चर किरण परमाणुओंकी भाँति हैं।

ईशावास्य कहते हैं—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥
(१५ मन्त्र और बृहदा० ५।१५।१ ब्राह्मण)

—शुद्धभक्तिके बिना श्रीभगवानका दर्शन नहीं होता। श्रीभगवानकी कृपा बिना शुद्धभक्ति नहीं होती। इसलिये कहते हैं—निर्विशेष-ब्रह्मरूप ज्योतिर्मय आच्छादन द्वारा सत्यरूप परब्रह्मका मुखोपलक्षित श्रीविग्रह आच्छादित है। हे जगत-पोषक परमात्मन्! सत्यधर्मानुष्ठान परायण मुझ जैसे भक्तों के साक्षात्कारके लिये आप उस आवरणको दूर करें।

बृहदारण्यकमें कहते हैं—

अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु
अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः
सर्वेषां भूतानां राजा इत्यादि॥ (२।५।१४-१५)

श्रीकृष्णको लक्ष्य करके गुण-परिचयद्वारा गौण रूपसे वेद कहते हैं कि आत्मारूप कृष्ण ही सम्पूर्ण भूतोंके मधु हैं, अधिपति हैं और राजा हैं। आत्मा-शब्दसे कृष्णका बोध होता है—ऐसा श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानं जगदात्मनाम् ।
(१०।१४।५५)

हे राजन्! आप कृष्णको समस्त आत्माओंकी आत्मा जानो। अन्वयके रूपमें छान्दोग्यमें कहते हैं—

तच्चेदत्र युक्तं यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म। स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति इति। एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः। स यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन सम्पन्नो महीयते इत्यादि। श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये इत्यादि॥ (८।१।१, ५, ८।२।५, और ८।१३।१ मन्त्र)

इस वेदवाक्यका साक्षात् अर्थ यह है कि ब्रह्मपुर में पद्मपुष्पके समान एक अप्राकृत धाम है। ब्रह्म-संहितामें इस धामका इस प्रकार वर्णन है—

सहस्रपत्रकमलं गोकुलाख्यं महत् पदम् ।
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांश-संभवम् ॥ (५।२)

वे परब्रह्मधाम या गोकुल अमृतके आश्रय हैं। वे अनन्तके अंशसे नित्य प्रकटित हैं। वहाँ जन्म-मरण आदि नहीं है। जो सब चितकण जीव वहाँ हैं अथवा वहाँ जाते हैं, वे पाप-पुण्यरहित, विजर, विमृत्यु, विशोक, क्षुधारहित, पिपासा-रहित, सत्य-काम और सत्यसंकल्प होते हैं। ऐसी शुद्ध आत्माएँ आठ प्रकारके अप्राकृत गुणोंसे युक्त होती हैं। उनमें

सख्य आदि जिस रसमें आनन्द होता है, वे उसी रसका वहाँ आस्वादन करते हैं। ह्लादिनी महाभाव-युक्त श्याम-सुन्दरकी नित्य उपासना करते हैं।

वेदमें यहाँ अन्वयरूपमें या साक्षात् वर्णन द्वारा श्रीकृष्णके नित्यधाम और उनकी लीलाका प्रकाश किया है।

व्यतिरेकभावसे वेद अनेक स्थलोंपर श्रीकृष्णको लक्ष्य करते हैं।

कठमें—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र-तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ (२।२।१५)

—उस स्वप्रकाश ब्रह्मको सूर्य, चन्द्र, तारागण और बिजली प्रकाशित नहीं कर सकती; फिर अग्नि-की तो बात ही क्या है। क्योंकि प्राकृत जगत्में जो कुछ भी तत्त्व प्रकाशशील हैं, सभी उस स्वप्रकाश भगवानसे ही प्रकाशित होते हैं। उन भगवानके प्रकाशसे ही समस्त जगत प्रकाशित होता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्य वर्णं तमसः परस्तात।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
सर्वतः पाणि-पादन्तत् सर्वतोक्षि - शिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमाल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
(श्वेताश्वतर ३।८, १६)

—इस महापुरुषको प्रकृतिसे अतीत स्वतःप्रकाश तत्त्व जानता हूँ। उनको जान लेने पर जीव मृत्युको पार कर जाते हैं। इसके अतिरिक्त मृत्युको पार करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। उनके हस्त और पद सर्वत्र व्याप्त हैं। उनकी आँखें, शिर, मुख और कान सर्वव्यापक हैं। वे सबको आवृत कर स्थित हैं अर्थात् सभीमें व्याप्त हैं।

श्वेताश्वतरमें—

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदूरमृतास्ते भवन्ति ॥
(४।२०)

—इनका रूप प्राकृत इन्द्रियोंकी पकड़में नहीं आ सकता। भौतिक आँखोंसे उनको कोई भी देख नहीं सकता है। जो इस हृदयमें स्थित पुरुषको विशुद्ध चित्तसे ध्यान द्वारा जान लेते हैं, वे ही मुक्ति लाभ कर सकते हैं।

वेदोंमें अनेक स्थानों पर इसी प्रकारसे गौण और व्यतिरेकरूपमें श्रीकृष्णका वर्णन है। केवल चित्-शक्तिके प्रकाशके समय मुख्य और अन्वयरूपमें वर्णन देखा जाता है।

श्रीमद्भागवतमें श्रुति-स्तव-प्रसंगमें ऐसा वर्णन पाया जाता है—

जय जय जह्यजामजित दोष-गृभीत-गुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्ध-समस्तभगः।
अग-जगदोकसामखिल-शक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥
(भा० १०।८७।१४)

—हे कृष्ण! जिनका गुण-समूह भी दोष ही माना जाता है, उस माया शक्ति नामक अजा (बकरी) का आप विनाश करें। आप आत्म शक्ति

द्वारा सर्वदा समस्त ऐश्वर्योंके अधिपति हैं। आप स्थावर-जंगम सबकी शक्तियोंके जगानेवाले हैं। वेदों ने आपका दो प्रकारसे वर्णन किया है, अर्थात् जिस समय आप मायाशक्तिको परिचालित करते हैं, तब एक प्रकारसे वर्णन करते हैं तथा जिस समय आप आत्मशक्ति अर्थात् चित्-शक्तिका अवलम्बन करके व्रजलीला करते हैं, तब दूसरे प्रकारसे वर्णन करते हैं। कारिका;—

ब्रह्म-रुद्र महेन्द्रादि दमने रासमण्डले।
गुरुपुत्रप्रदानादावैश्वर्य्यं यत्प्रकाशितम् ॥
नान्य-प्रकाश-बाहुल्ये तादृष्टं शास्त्रवर्णने।
अतः कृष्णपारतम्यं स्वतःसिद्धं सतां मते ॥

श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंमें श्रीकृष्णलीलाके वर्णनमें, ब्रह्म रुद्र-इन्द्रादिके दमनके समय, रासलीला में तथा गुरुपुत्रोंको वापस लानेके कार्य में जैसे ऐश्वर्य का प्रकाश हुआ है, वैसा प्रकाश अन्यत्र अनेक प्रकाशोंमें भी कहीं नहीं देखा जाता। अतएव साधु-जन ऐसा कहते हैं कि कृष्णका पारतम्य स्वतःसिद्ध है। अतएव श्वेताश्वतरमें कहते हैं—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्।
तं दैवतानां परमञ्च दैवतम् ॥
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्।
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ (६।७)

—तुम ब्रह्मा और रुद्र आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर —परम महेश्वर हो। तुम इन्द्रादि देवगणोंके भी परम देवता हो। तुम प्रजापतियोंके भी पति (पालक) हो। तुम पर (श्रेष्ठ) तत्त्वके भी श्रेष्ठतत्त्व हो। हम लोग तुमको जगत् वंद्य लीला-परायण परमेश्वर मानते हैं।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

श्रीकृष्णाविर्भाव महोत्सव

एक दिन महाराज नन्दगोप अपने बन्धु-बान्धवों और मंत्रियोंके साथ राजदरबारमें विराजमान हो रहे थे। श्रेष्ठ-श्रेष्ठ गोपियाँ भी परदेके भीतर निर्दिष्ट स्थान पर बैठी थीं। सभी मिल कर बड़े हर्षसे तरह-तरहकी बातें कर रहे थे। सभाके दक्षिण भागमें श्रीनन्दमहाराजके पिता श्रीपर्जन्य भी बैठे थे। उनके साथ वृद्ध-वृद्ध परमपूज्य ब्राह्मण लोग भी बैठे थे। श्रीनन्द महाराजके अगल-बगलमें उनके भ्रातागण—उपनन्द, अभिनन्द, नन्दन और सुनन्दन अपने-अपने स्थान पर बैठे थे। सामने मंत्रीलोग बैठे थे। सभागृह लोगोंसे भरा हुआ था। सभी प्रेमपूर्वक बातें कर रहे थे। परन्तु एक बात ऐसी थी जो उनके आनन्दको अधूरा बना रही थी। वह बात यह थी कि अभीतक श्रीव्रजराजको कोई सन्तान न थी। उसी समय दरबारके पूर्वद्वारसे गेरुआ वस्त्र धारण की हुई सूर्यकी कान्तिको भी पराभूत करती हुई एक

तपस्वीनीने प्रवेश किया। तपस्वीनीके साथ एक ब्रह्मचारी और एक ब्रह्मचारिणी भी थी। वे दोनों ही बड़े सुन्दर थे।

इन तीनोंको सभागृहमें प्रवेश करते ही उनके स्वागतके लिये सब सभासदगण उठ खड़े हुए। महाराज नन्दने झटसे अपना आसन छोड़ कुछ आगे बढ़ कर उनकी अभ्यर्थना की तथा उनको प्रणाम कर सभाके बीच एक उत्तम आसन पर पधराया। फिर महारानी यशोदाके साथ उनके पैर धोकर पाद्य अर्घ्य आदि देकर उनका पूजन किया।

तदनन्तर श्रीनन्दमहाराजने विनीत भावसे उनसे पूछा—'देवि! आप आप कहाँसे पधारी हैं? आपके साथके ये ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी कौन हैं?'

महाराज नन्दकी बात सुन कर तपस्विनीने मुसकराते हुए बड़े ही मधुर शब्दोंमें उत्तर दिया—मैं एक संन्यासिनी हूँ। महामुनि देवर्षि नारदजी मेरे गुरु हैं। मेरा नाम पौर्णमासी है। मैं अब तक अवन्ती नगरमें रहती थी। मेरा एक पुत्र है। उसका नाम सान्दिपनी है। वह अवन्तीनगरमें ही रहता है। वह निखिल वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता है। ये ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी उसीकी सन्तान हैं। ब्रह्मचारीका नाम मधुमंगल है तथा ब्रह्मचारिणीका नान्दीमुखी। अब मेरी यह अभिलाषा है कि जीवनके अवशेष दिन परम तीर्थ स्थली श्रीयमुनाके तट पर कहीं निवास करूँ। इसीलिये मैं यहाँ उपस्थित हुई हूँ।'

तपस्विनीकी इस प्रकार मधुर बात सुन कर नन्दमहाराज बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने पुनः पुनः तपस्विनीकी पूजा की तथा उन्हें भूमि, गौवें तथा धन दिये। इसी बीच नन्दमहाराजके हितैषी मित्रों और बन्धु-बान्धवोंने सुयोग देख कर नम्रतासे जिज्ञासा की—'देवि! आप परम तपस्विनी और त्रिकालज्ञ हैं। हमारे महाराजके भविष्यमें कुछ बतलानेकी कृपा करें।'

पौर्णमासी देवीने महाराज नन्दकी ओर देखते हुए कहा—'मैं तो महाराजके कितने ही परम आश्चर्य जनक अपूर्व वैभवोंको देख रही हूँ।

सभासदोंने उत्सुकतापूर्वक पूछा—'देवि! आप महाराजके किन-किन वैभवोंको देख रही हैं? यदि अनुचित न समझे तो बतलानेकी कृपा करें।'

पौर्णमासीजीने कहा—'मैं तो ऐसा देख रही हूँ कि महाराजको परम निधि-स्वरूप सर्वगुण सम्पन्न एक पुत्र रत्न पैदा होगा एवं सम्पूर्ण जगत्का अखिल ऐश्वर्य उसके चरणोंमें लोटेगा।'

पौर्णमासीजीकी बात सुनकर सभीलोग आनन्दातिरेकसे नाच उठे और बोले—'भाइयों! यह बड़े आनन्दकी बात है; हम लोग नन्द महाराजके आँगनमें उनके पुत्रको खेलते हुए देखेंगे। तब तो महावन परम तीर्थ हो जायेगा। चलो, हम लोग देवीके ठहरनेके लिये यमुनाके किनारे एक सुन्दर आश्रम प्रस्तुत कर आवें।' तदनन्तर श्रीनन्द महाराज और यशोदाजीने श्रीपौर्णमासी देवीकी चरणधूलिको अपने-अपने मस्तक पर धारण किये। उस समय उपस्थित जन-समूहने आनन्दसे पौर्णमासी देवीका जय-घोष किया। श्रीनन्द महाराजकी वृद्ध माता श्रीवरीयसी गोपी आनन्दसे भर गयीं। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी धारा बहने लगी। वे बार-बार बहू

यशोदाको अङ्कमें धारण कर उनका मुख चूमने लगी। यशोदाजीने सावधानीसे पूजनीया गोपियों और वृद्ध-वृद्ध गोपों प्रणाम किया और फिर वे अन्तपुरमें पधारीं। सभा विसर्जित हुई।

रातमें श्रीनन्द महाराजने एक बड़ा ही आश्चर्य-जनक स्वप्न देखा। वह स्वप्न इस प्रकार था—नित्या-राध्य भगवान श्रीहरिने उनके हृदयमें प्रवेश किया और फिर तुरन्त ही बिजलीकी गतिसे यशोदाजीके हृदयमें प्रवेश कर वे एक कुमारिका द्वारा आवृत हुए स्वरूपसे गर्भमें स्थित हो गये। उसी समयसे यशोदा-जीको गर्भ रहा। उसी दिन श्रीवसुदेवजीकी पत्नी श्रीमती रोहिणीजी भी व्रजमें आ गयीं। सम्पूर्ण व्रजमें दिन के दिन नाना-प्रकारके ऐश्वर्य प्रकट होने लगे। ऐसा देख कर गोप-दम्पति और भी अधिक भक्तिपूर्वक साधु-संतों और ब्राह्मणोंकी सेवा तथा दान-ध्यान और पूजन करने लगे।

तदनन्तर भाद्रमासकी कृष्णाष्टमीकी मध्यरातमें श्रीहरि योगमायाके साथ श्रीयशोदाके गर्भसे प्रकट हुए। देवतालोग स्वर्गसे पुष्पकी वर्षा करने लगे। धरादेवीका दुःख दूर हो गया। ब्राह्मणोंकी यज्ञाग्नि पुनः प्रज्ज्वलित हो उठी। साधु-पुरुषोंके हृदयमें आनन्दकी धारा बहने लगी।

प्रातःकाल श्रीनन्द महाराजके पुत्र होनेका संवाद क्षण भरमें सारे व्रजमें फैल गया। चारों ओर जय-जयकी ध्वनि उठने लगी। कोई पुरीको सजाने लगे, कोई आनन्दसे दान देने लगे, कोई प्रेमसे नाचने लगे, कोई मधुर-मधुर गीत गाने लगे। हमारे श्रीसनातन गोस्वामी भी आनन्दसे नयनानन्द स्वरूप श्रीमूर्त्तिका दर्शन करने लगे। नन्द-भवनमें लोगोंकी बड़ी भीड़ जम गयी। वहाँ नाना प्रकारके वाद्य बजने लगे। गोपगण गौवों एवं बछड़ोंको हल्दी और तेल लगा कर स्नान करा उन्हें अच्छी तरहसे सजाने लगे। उस समय श्रीनन्द महाराजके मित्र और बन्धु-बान्धव कावरोंमें भर-भर कर दूध और दहीके साथ नन्द भवनमें उपस्थित हुए। ब्राह्मणगण स्वस्ति वाचन तथा जातकर्म करने लगे।

इधर पूज्य वृद्ध गोपोंने नन्दराजके आँगनमें दधि हल्दीका कीचड़ बना दिया। श्रीयशोदाके पिता सुमुख गोपने हर्षित होकर श्रीपर्जन्य गोपके सिर पर दधि-दूध डाला और फिर दोनों परस्पर आलिङ्गन कर नाचने लगे। इसी प्रकार सब गोपोंने दधि-महो-त्सव किया। श्रीनन्द महाराजने अपने पुत्रके आवि-र्भाव महोत्सवके उपलक्षमें ब्राह्मणोंको विविध प्रकार के स्वादिष्ट भोजन खिलाये। इसी प्रकार गरीबों और भिक्षुकोंको उनकी रुचिके अनुसार भोजन दिये। आज भी उस उत्सवको नन्दोत्सव कहते हैं।

प्रेमसे बोलो व्रजानन्दकन्द भगवान बालकृष्ण की जय।

श्रीहरिकृपादास ब्रह्मचारी "भक्ति शास्त्री"

नन्दोद्धार

[गताङ्कसे आगे]

किंकर्त्तव्य - विमूढ़ मूढ़ सम
हुए गोपपति मौन व्रती हो ।
कर न सके कुछ वरुण भूप का
कृष्ण पिता कमनीय कृती हो ॥१६॥

वहाँ विलोका वनागार में
दृश्य विचित्र व्रजाधीश ने ।
कह न सके अपलक दृष्टि से
निरत निहारा गोपाधीश ने ॥१७॥

देखे शम्भु ब्रह्म सह सुर - गण
रूप अनेकों में शोभित थे ।
उनके मध्य भव्य आसन पर
कृष्णचन्द्र अति ही शोभित थे ॥१८॥

मानो तारापति राजित था
तारागणके बीच विराजित ।
सभी मन्त्र उच्चारण करते
कृष्णचन्द्र राजत नीराजित ॥१९॥

इधर पद्मिनी नाथ गगन में
पूर्व दिशामें उदित हुए थे ।
नन्द – रहित आनन्द – हीन हो
व्रज-वासी गण दुःखित हुए थे ॥२०॥

अन्वेषण करते व्रजेश का
व्याकुल हो आबाल वृद्ध सब ।
निकले निज-निज नवल निलय से
खोकर चित्त-चेतना को तब ॥२१॥

किन्तु मिले ना मोद – प्रदायक
व्रजाधीश वसुदेव – मित्र जब ।
रो रोकर वे लगे लोटने
धरणी पर निज धैर्य गँवा सब ॥२२॥

कृष्ण – कृष्ण करती पुकारती
कातरसी तर–से नैनों से ।
मात यशुमति यष्टि टेकती
आई ढिग हरि मृदु वैनों से ॥२३॥
हाय पुत्र तव पिता विहीना
मैं किस तरह रहूँगी भू पर ।
अबला का बल सदा पति है
रहता कौन बना निर्बल नर ॥२४॥
पति से गति है पति से मति है
पति ही जीवन है प्राण – धन ।
पति त्यक्ता बाला वियोगिनी
जल बिन मीन सदृश रवि पद्मिन ॥२५॥
नारी चातकी का स्वाती जल
वाम - दाम का पति ही धन है ।
बिना सलिल के सरित हीन सी
नारी-मीन का पति जीवन है ॥२६॥
लाल अखिल व्रज वसुन्धरा को
अनुनय विनय मातु करती है ।
व्रजाधीशका पता लगा दे
लाल यशोदा पग पड़ती है ॥२७॥
सुन जननी की विह्वल वाणी
नन्दनन्दन के नैन भर आये ।
मानो विरहानल सुतप्त हो
नीर हृदय नीरव उभर गये ॥२८॥
देकर उसे समुचित सान्त्वना
वनमाली बन बन को निकले ।
वन में नृपका पता लगा नहीं
वन में घुस पुनः न निकले ॥२९॥
व्रजेश्वरी राधाके ईश्वर
पहुँचे वरुण लोक ज्यों मोहन ।
हुआ शीघ्र आलोक अलौकिक
चमके हो बहु-चक्र विमोहन ॥३०॥

(क्रमशः)

—शङ्करलाल चतुर्वेदी, एम. ए. साहित्यरत्न

उपनिषद्-उपाख्यान

पिप्पलाद ऋषि और श्रीचतुर्मुख

प्राचीन कालमें पिप्पलाद नामक एक विख्यात ऋषि हुए हैं। शास्त्रोंकी उन्होंने निरन्तर आलोचना और साथ ही साथ दीर्घकाल तक तपस्या भी की। आत्म मंगलकी इच्छासे वे एक दिन अपने पिता एवं गुरु ब्रह्माके पास गये और उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"भगवन् ! इस संसारमें मेरे लिए श्रेयः वस्तु क्या है ? कृपया इस विषयमें उपदेश प्रदान कर मुझे कृतार्थ करें। इस विषयमें जाननेका इच्छुक हूँ।"

पिप्पलादकी बात सुनकर ब्रह्माजी बोले—"वत्स ! तुम और कुछ काल तक तपस्या और ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करो। वैराग्य और सदाचारके द्वारा अन्तःकरणको पवित्र करो। इस तरह मनको वशीभूत करो।"

पिप्पलादने 'गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया' इस शास्त्र वाक्यके अनुसार गुरुकी आज्ञासे कठोर तपस्या की और ब्रह्मचर्यका पालन किया। इस तरह शुद्ध-चित्त होकर गुरुके निकट उत्सुकतासे पुनः प्रश्न किया—"गुरो ! कलियुगमें स्वभावसे ही पापकर्मोंमें प्रवृत्त मनुष्य कैसे मुक्त होंगे ? कलिमें जीवोंके उपास्यदेव कौन हैं एवं उनका भजन-मंत्र क्या है ? यदि अधिकारी समझें तो मुझे यह बतलानेकी कृपा करें।"

ऐसा सुनकर सर्ववेद रहस्यविद् आदिकवि चतुर्मुख ब्रह्माजी बोले—"वत्स ! यह परम निगूढ़ रहस्य तुम्हें अवश्य ही बतलाऊँगा। जो शिष्य अपने गुरु के प्रति भगवद्बुद्धि रखता है, गुरुदेव उसे ही साधन भजन सम्बन्धी उन्नततम वेदगुह्य रहस्यका भी उपदेश करते हैं। "छन्नः कलौ" वाक्यके अनुसार कलियुगके उपास्य स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेव जिस प्रकार छन्नावतार हैं, उसी प्रकार श्रुति-स्मृति शास्त्रों में गुप्त भावसे ही उनके अवतरणके सम्बन्ध उल्लेख है। इस कारणसे ही कर्म-ज्ञानविमूढ़ जन दुर्भाग्यवशतः उपास्य विषयमें सन्धान-रहित होकर अधःपतित होते हैं। इस समय उन्हीं कलियुगपावनावतारी श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सम्बन्धमें तुम्हें विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ:—

"अनन्त-कोटि विश्व-ब्रह्माण्डमें सबके अन्तरात्मा स्वरूप, परमप्रिय, महापुरुष, महात्मा, महायोगी, मायातीत, विशुद्ध-सत्त्वरूप, द्विभुज मुरलीधर श्यामसुन्दर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कलिकालमें गंगा के किनारे सर्वोत्कृष्ट गोलोकरूप नवद्वीप धाममें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रूपसे अवतीर्ण होकर इस जगत में प्रेमभक्तिका प्रकाश और प्रचार करेंगे। इस विषय में सभी शास्त्रोंमें 'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं' इत्यादि पर्याप्त प्रमाण विद्यमान हैं। वही परमदेवता गौरचन्द्र सत्य, त्रेता, और द्वापर युगमें श्वेत, रक्त, और श्यामवर्ण धारण करते हैं। चैतन्यस्वरूप चित्-शक्तिमान होकर भी वे कलियुगमें भक्तभाव अङ्गीकार करके प्रेम-भक्तिका दानकर जीवोंका चरम कल्याण करेंगे। कीर्त्तनाख्या भक्तिके द्वारा ही जीव अपने चित्-स्वरूपको जान पायगा। वेदान्तवेद्य परमात्मा श्रीकृष्ण चैतन्य-स्वरूप श्रीचैतन्यदेवके रूपमें सबके आराध्य होंगे। पुराणपुरुष, चैतन्य-विग्रह,

विश्वके परमकारण, महान्तस्वरूप उन्हीं श्रीचैतन्य महाप्रभुको जानने पर ही जीव जन्म-मृत्युके बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। उनकी कृपाके बिना मायासे मुक्त होनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है।

"वही परमेश्वर अपने श्रीनाममूल मंत्रके द्वारा सबको आनन्द प्रदान करते हैं। ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्—इन तीनों शक्तियोंसे वे युक्त हैं। वे स्वयं श्रीमुखसे हरि-कृष्ण-राम अर्थात् "हरे कृष्ण" सोलह नाम बत्तीश अक्षरात्मक महामंत्रका सर्वदा कीर्त्तन करते हैं। जीवोंकी भगवत् बहिर्मुखता रूप हृदय ग्रन्थिका हरण करते हैं, इसलिए उनका नाम हरि है। उनके स्मरणसे सब प्रकारके क्लेशोंकी निवृत्ति होती है, इसलिए वे कृष्ण हैं। सब जीवोंको आनन्द प्रदान करते हैं, इसलिए वे आनन्द स्वरूप 'राम' कहलाते हैं। मह मंत्र ही सर्वमंत्रसार है एवं कलि जीवों का परम साधन और धर्म है। जो इस तारक-ब्रह्म-नामका अपराध रहित होकर सदैव कीर्त्तन करते हैं, वे लोग अवश्य ही भगवानको प्राप्त करेंगे। नित्य सिद्ध मुक्त पुरुषगण भी सर्वमंत्रसार इस श्रीनाम-कीर्त्तनका सुयोग प्राप्त करनेके लिए कलियुगमें जन्म ग्रहणकी अभिलाषा करते हैं।

"श्रीचैतन्यदेव ही संकर्षण और वासुदेव हैं एवं वे ही सर्वावतारी हैं। उनके द्वारा ही चराचर विश्व, समस्त जीव, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, वरुण, सभी देवताओं आदिकी सृष्टि हुई है। वे ही सब कारणोंके भी कारण हैं। नश्वर जगत और अविनाशी जीवसे भी जो श्रेष्ठ हैं, वे ही पुरुषोत्तम हैं। वही परतत्त्व ही श्रीचैतन्यदेव हैं। जो श्रीचैतन्य महाप्रभुके भजन ध्यान और सेवामें रत रहते हैं—वे ही अनर्थ मुक्तावस्थामें परतत्त्व लाभके अधिकारी होकर परमगति को प्राप्त करते हैं। सर्वसद्गतिदायक श्रीचैतन्य महाप्रभुके विमुख जीवके लिए मङ्गलकी कदापि सम्भावना नहीं है।"

पिप्पलाद ऋषि लोक-पितामह ब्रह्मासे यह सर्व-गुह्यतम वेद निगूढ़ परम सत्यतत्त्व लाभकर बारम्बार श्रीगुरुपादपद्मोंका अभिवादन करके अपनेको कृत कृतार्थ मानने लगे।

उक्त उपाख्यानमें प्रधानतः निम्न विषय प्रकट हुए हैं:—(१) सत्-गुरु-पदाश्रय व्यतीत बद्ध जीवों को साधनमें सिद्धि नहीं लाभ होती।

(२) गुरु-पदाश्रय ग्रहण करनेके पश्चात् सम्बन्ध ज्ञानके उदित होनेपर भगवान, जीव और मायामें परस्पर जो अविच्छिन्न सम्बन्ध (अचिन्त्य.भेदाभेद रहस्य) है, उसको जाननेकी इच्छा होती है। तब जीव अपने परम कर्त्तव्यके विषयमें जिज्ञासु होकर शब्द ब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात (अनुभवयुक्त ज्ञान प्राप्त) गुरुपादपद्मोंके निकट मङ्गल लाभके लिए उपाय पूछते हैं।

(३) विप्रलम्भ-रस-विग्रह व्रजप्रेम प्रदाता श्रीकृष्ण-चैतन्यमहाप्रभु ही कलियुगके एकमात्र आराध्य देव हैं।

(४) सोलह नाम बत्तीस अक्षरात्मक 'हरे कृष्ण" महामंत्र ही समस्त मंत्रोंका सार है। यज्ञ, योग, तपस्या और अन्यान्य देवताओंकी उपासनाको परि-त्याग करके श्रीनाम-संकीर्त्तन यज्ञके द्वारा उस कलि-युगपावनावतारी श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी आरा-धना करनेसे कलिमें जीव कृतकृत्य होंगे।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज

(अनुवादक—श्रीओंमप्रकाश ब्रह्मचारी, साहित्यरत्न)

श्रीमद्भागवतमें वात्सल्य भाव

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ८ संख्या ४ पृष्ठ ८८ से आगे)

जिन्हें त्रिलोकी में कभी कोई नहीं बाँध सकता, जिन्हें युगों-युगों तक तपस्या करके भी कोई नहीं पा सकता, उन वात्सल्य भावके सर्वस्व मनमोहन नन्दलालको भाग्यशालिनी पूतचरित्रा नन्दरानीने तनिकसे अपराधपर बांधकर ही चैनकी साँस ली। बालरूपधारी परब्रह्म श्रीकृष्ण भी माताके सन्तोषके हेतु स्नेह-रज्जुसे बँध ही गये। कैसी विचित्रलीला है व्रजेशकी। अन्तमें नन्दगेहिनी तो गृहकार्यमें तल्लीन हो गई। वह कान्हके बन्धनकी बातको भी भूल गई। परन्तु ऐसे समय दामोदर भला कब स्थिर रहते। उन्होंने तो यह बंधन भी किसीके उद्धारके हेतु ही स्वीकार किया था। अतः वे धीरे-धीरे ऊखल से बंधे-बंधे ही विशाल ऊखलको खींचते-खींचते बहुत पुराने यमलार्जुन नामधारी दो वृक्षोंके बीचमें जा पहुँचे और ऊखलको तिरछी कर जैसे ही थोड़ा सा बलका प्रयोग किया कि वे दोनों वृक्ष बृहत् ध्वनिके साथ मूलसे उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन वृक्षोंसे नारदके शापसे शापित नलकूबर और मणिग्रीव नामके दो दिव्यपुरुष प्रकट हुए। उन्होंने युगोंसे प्राप्त वृक्ष योनिको छोड़कर नन्दलालके चरणों में लोट-लोटकर बहुत देर तक स्तुति की और अपने लोकको प्रस्थान कर गये। इस प्रकार भगवान् की लीलाका प्रयोजन सिद्ध हुआ।

वृक्षोंके पतनकी ध्वनिको श्रवण कर गोप-ग्वाल और नन्द आदि वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि नव-नीरद श्याम जिनके मुख मण्डल पर अनवरत रुदन करनेसे कज्जलकी काली-काली रेखाएँ हो रही हैं, जिनके छोटे-छोटे चिकुर इधर उधर बिखर रहे हैं, जिनकी विशाल आँखें और तिरछे भौंहें हैं, सारा शरीर धूलिसे धूसरित हो रहा है, जो झगुली पहने हुए हैं, केहरिके नखोंका कठुला जिनके कण्ठकी शोभा बढ़ा रहा है, जिनके ललाटपर केशरकी खोर लगी हुई है तथा श्रमके कारण स्वेदकण झलक रहे हैं, बलपूर्वक ऊखल खींच रहे हैं। निदान नन्दका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने अपनी महरीको बुरा भला कहते हुए प्रेम भरित हो हँसते-हँसते अपने लाडिले के बंधन खोल दिये और शीघ्र ही उन्हें गोदीमें उठाकर छातीसे लगा लिया।

> उलूखलं विकर्षन्तं दाम्नाबद्धं स्वमात्मजम्।
> विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह॥
>
> (भा. १०.११।६)

आरम्भसे ही बाल गोपालने सभीपर ऐसा कुछ टोना कर दिया था कि क्या गोप, क्या गोपियाँ और क्या पशु-पक्षी, सभीको उनको निरखे बिना चैन नहीं पड़ता था। गोपियाँ तो सारे गृहकार्योंको छोड़कर नन्दकुमारके पास एकत्र हो जातीं। किसी समय उन्हें उत्साहित कर किसी प्रकारका प्रलोभन देकर नटराजको नचातीं, किसी समय काठकी पुतली की तरह अपनी इच्छाके अनुसार इधर-उधर

बुलातीं, बाँसुरी बजानेको कहतीं, उनकी मीठी-मीठी रसभरी बातें सुनतीं। उन्हें आज्ञा देकर अपने गृह का सारा कार्य करातीं, दूध दुहाती और भी आवश्यक कार्योंमें लगातीं। भक्ताधीन प्रभु उनकी रुचिके अनुसार सारा कार्य करते। कभी बालकोंको प्रसन्न करनेके लिये अपनी बाँह ठोकते, युद्धका उपक्रम करते, लड़ते-झगड़ते, कभी खेलमें हारनेपर साथीको कन्धों पर चढ़ाते, कभी जीतने पर स्वयं अपने साथीके कन्धे पर चढ़ते। नन्दके भवनमें कोई मनमोहक सुन्दर खिलौने लेकर आता तो उससे अपने लिये इच्छित खिलौने प्राप्त करते। हठीले लाल जिसे प्राप्त करना चाहते, उसे जबतक प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक अपना हठ नहीं छोड़ते। कोई मालिन नन्दके घर फल लेकर आती तो सभी फलोंके दाता होकर भी अपने छोटे-छोटे सुकमल करोंमें धान लेकर वहाँ पहुँच जाते। मालिन उनके करोंको फलसे पूर्ण कर देती। वे उसकी टोकरीको रत्नोंसे भर देते। कोई भी किसी प्रकारका खेल दिखाने आता तो नन्द-प्राङ्गणमें उसका खेल अवश्य कराते और उसके देखनेमें इतने बेसुध हो जाते कि उन्हें किसी बातका ध्यान ही नहीं रहता। कभी समान अवस्था वाले बालकोंके साथ क्रीड़ामें तन्मय हो जाते और माताओंके पुकारको भी नहीं सुनते।

रामं च रोहिणीदेवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥
नोपेयातां यदाऽहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ।
यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥
क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम्।
यशोदाऽजोहवीत् कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥
(भा. १०।११।१२ से १४)

श्रीकृष्ण और बलदेवको रोहिणीदेवी पुकार-पुकारकर बुलातीं, परन्तु राम और श्याम दोनों खेलनेमें अत्यन्त निमग्न रहनेके कारण कुछ भी नहीं सुनते। जब उन्हें अपने पास नहीं आते देखतीं, तो रोहिणी पुत्र-वत्सला यशोदाको उन दोनोंको बुलाने को भेजती। पुत्र स्नेहसे पयोधर जिसके, झर रहे हैं वे यशोदा बालकोंके साथ खेलनेवाले सुत कृष्णको अग्रज बलरामके सहित पुकारती—

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीड़ाश्रान्तोऽसिपुत्रक ॥
हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन।
प्रातरेव कृताहार स्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥
प्रतीक्षतेत्वां दाशार्ह, भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यात बालकाः ॥
(भा. १०।११।१५ से १७)

हेकृष्ण हे कृष्ण! हे कमलनयन! हे तात! आओ, स्तन पान करो; क्योंकि खेलते-खेलते थक गये हो। हे पुत्र! क्षुधासे श्रान्त हुए हो, अब खेलना समाप्त करो। हे राम! हे प्यारे कुलनन्दन! शीघ्र ही छोटे भैयाके साथ आओ। तुमने सवेरे ही कलेऊ किया था; इसलिये अब तुमको भोजन करना उचित है। बेटा बलराम! व्रजराज नन्दरायजी भोजन करने बैठे हैं, वेह भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब तुम दोनों आओ और हमें प्रसन्न करो। इतना कहने पर भी जब दोनों लाल नहीं आते, तो यशोदा दूसरे बालकोंको कहतीं—अब तुम सब अपने-अपने घर चले जाओ।

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह।
जन्मर्क्षं मद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥

पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान् स्वलंकृतान् ।
त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ।
(भा. १०।११।१८ से १९)

बेटा ! तुम्हारा शरीर धूलिसे भर रहा है; आकर स्नान करो । आज तुम्हारी जन्मगांठ है । ब्राह्मणोंको गोदान करो । देखो, तुम्हारे बराबरके लड़कोंको उनकी माताओंने उन्हें स्नान कराकर कैसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र आभूषण पहना दिये हैं । तुम भी स्नान करो, अच्छे वस्त्र धारणकर भोजन करो । उसके पश्चात् खेलो ।

इत्थंयशोदा तमशेषशेखरं, मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं, नीत्वा स्ववाटं कृत्वथोदयम् ।।
(भा. १०।११।२०)

जब दोनोंने फिर भी नहीं सुना तो स्नेहसे बंधी हुई बुद्धिवाली यशोदा ब्रह्मादि देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान्‌को अपना पुत्र ही समझती हुई बलदेवके सहित दोनोंके हाथ पकड़ अपने भवनमें ले आईं और स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र अलङ्कार धारण कराकर, भोजन करा, मङ्गल कार्योंमें लग गईं ।

(क्रमशः)

मथुरामें शुद्ध भक्तिका प्रचार

श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने गत ३० सितम्बर तथा ६ अक्टूबरको स्थानीय वकील—बाबू ठाकुर प्रसादजीके निवासस्थान पर, ७ अक्टूबरको प्रसिद्ध चिकित्सक डा० वाई. एन. अरोराके निवास स्थान पर, ८ अक्टूबरको डा० सरताल बहादुर (पशु-चिकित्सकके निवास स्थानपर तथा ९ अक्टूबरको असिस्टैन्ट इंजिनीयर, पी. डब्लू. डी.—श्रीयुत सक्सेना महोदयके निवास स्थानपर श्रीमद्भागवतका प्रवचन किया । प्रवचनके पूर्व एवं पश्चात् बड़ा ही सुन्दर संकीर्तन हुआ । स्वामीजीके साथ श्रीहरिदास ब्रजवासी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, श्रीरङ्गनाथ ब्रह्मचारी तथा श्रीशेषशायी ब्रह्मचारी आदि १० ब्रह्मचारी भी थे । सम्पादक महोदयने श्रीमद्भागवतके माध्यमसे आधुनिक कालमें धर्मकी महत्ता, मनुष्यका कर्त्तव्य, आत्मा-तत्त्व, विशुद्धभक्ति तथा हरिनाम संकीर्तनकी विशेषता आदि विषयोंका वैज्ञानिक विचारधारा, शास्त्रीय प्रमाण एवं युक्तियोंके आधार पर बड़ा ही आकर्षक और पाण्डित्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया । सभी स्थानोंपर उच्च-शिक्षित श्रोता उपस्थित हुए । सभी लोग प्रवचन एवं संकीर्तनकी प्रशंसा कर रहे हैं ।

—प्रकाशक

साधु संगमें तीर्थ दर्शनका—

सुवर्ण सुयोग

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति पिछले १५-२० वर्षोंसे सर्व-साधारणको तीर्थ-दर्शनका सुयोग देती आ रही है। इस वर्ष भी आगामी १४ कार्तिक, ३१ अक्टूबर १९६२ बुधवारको हावड़ा स्टेशनसे टूरिस्ट कार गाड़ी द्वारा तीर्थ यात्राका आयोजन निश्चित हुआ है। यात्रियोंको सूचित किया जाता है कि वे उक्त दिवस २ बजे दिनसे लेकर शामके ७ बजेके भीतर हावड़ा स्टेशन के ८ नं० के प्लेट फार्म पर समितिके अधिकारियोंसे मिलें। ध्यान रहे कि दर्शनीय तीर्थोंमें से अधिकांश स्थल श्रीमन्महाप्रभु के पद स्पर्श प्राप्त हैं। अतएव आत्मकल्याणकामी सज्जनोंको इस सुयोगसे लाभ उठाना चाहिये।

इस तीर्थ यात्राकी विशेषता यह है कि यात्रीगण गाड़ीके भीतर ही प्रतिदिन श्रीविग्रहका अर्चन, मंगलारति, भोगारति, संध्यारतिके दर्शन तथा श्रीहरिसंकीर्तन, श्रीमद्भागवतादि शास्त्रोंके प्रवचन, उनकी व्याख्या, तीर्थमाहात्म्य आदिके श्रवण, एवं सवेरे, शाम महाप्रसाद-सेवनका अपूर्व सुयोग प्राप्त कर सकेंगे।

दर्शनीय स्थान

(१) हावड़ासे यात्रा, (२) गया, (३) प्रयाग, (४) आगरा (ऐतिहासिक ताजमहल), (५) मथुरा, (६) गोकुल, (७) रावल, (८) वृन्दावन, (९) वेलवन, (१०) राधाकुण्ड, (११) गोवर्द्धन, (१२) बरसाना, (१३) नन्दग्राम, (१४) संकेत, (१५) दिल्ली, (हस्तिनापुर), (१६) कुरुक्षेत्र, (१७) भद्रकाली, (१८) हरिद्वार, (१९) कनखल, (२०) हृषीकेश, (२१) लक्ष्मण झूला, (२२) नैमिषारण्य, (२३) अयोध्या (२४) काशी, (२५) वैद्यनाथ धाम और अन्तमें हावड़ा लौटना।

नियमावली—

(१) रेल-किराया, मोटर बसका किराया, ठहरनेके स्थानोंका किराया, प्रतिदिन दो बार महाप्रसाद-का खर्च—सब मिला कर २२५) प्रति यात्रीको भिक्षा-स्वरूप देना होगा। (२) यात्री गरम कपड़े, संक्षेपमें बिस्तरा, एक लोटा, एक थाली साथ रखेंगे। (३) यात्रामें लगभग २२ दिन लगेंगे। (४) विशेष कुछ जाननेके लिये त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजके निकट श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पो० चुचुड़ा, (हुगली) के पते पर पत्र व्यवहार करें।

निवेदक—सभ्यवृन्द, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति।